अस्तित्ववाद
(EXISTENTIALISM)

(1)

'अस्तित्ववाद' एक दार्शनिक विचारधारा नहीं है, अपितु एक रुझान, प्रवृत्ति या दृष्टिकोण है। यह विश्लेषणात्मक दर्शन से सम्बन्धित है। यह समस्त अमूर्त चिन्तन को अस्वीकार करता है। इसके समर्थक इसे तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत करते हैं और अमूर्त विवेकवाद की स्थिति को अस्वीकार करते हैं। अस्तित्ववादी विचारकों का आग्रह है कि दर्शन को व्यक्ति के अपने जीवन, उसके अनुभव और ऐतिहासिक स्थिति के साथ सम्बन्धित किया जाना चाहिए जिसमें वह स्वयं को पाता है। दूसरे शब्दों में, यह ऐसा दर्शन होना चाहिए जिससे जीवन जीने योग्य बनाया जा सके।

'अस्तित्ववाद' सरलतापूर्वक परिभाषित किए जाने योग्य विचारधारा नहीं है। इसके अनेक स्वरूप हैं। सुकरात, आगस्टीन और पास्कल में इसके बीज विचारों को ढूंढ़ने की कोशिश की गई है। नीत्शे ने भी ऐसे जगत में अकेले मनुष्य का जो अपने से बाहर अन्य किसी स्रोत से मूल्य ग्रहण करने में असमर्थ है, विवेचन किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्ववादियों ने भी लगभग वहीं से अपना चिन्तन शुरू किया है। इन अस्तित्ववादियों में ज्यां पॉल सार्त्र, अलबर्ट कामू, कार्ल जैस्पर्स, गैब्रिल मार्सेल, आदि महत्वपूर्ण हैं।

अस्तित्ववादी विचारकों में कई बातों में भिन्नता पायी जाती है, तथापि उन सबमें एक ही समान तत्व यह है कि वे सभी वैयक्तिक मानवीय अस्तित्व पर बल देते हैं। वे किसी भी धार्मिक या इतिहासपरकता को अपना मूलस्रोत बनाने से निषेध करते हैं। दूसरे शब्दों में, उनके मूल्यों का आधार मनुष्य की भावनाएं, संवेग और तात्कालिक अनुभव हैं। इस दृष्टि से अस्तित्ववाद वैज्ञानिक बुद्धिवाद, निर्वैयक्तिकरण तथा सर्वाधिकारवादी व्यवस्था, आदि के विरुद्ध है। दार्शनिक दृष्टि से ये एडमंड हर्सल के घटना-क्रिया विज्ञान, किर्केगार्द के चिन्तन, कार्टसीय, आदि पद्धतियों को अपनाते हैं। घटना-क्रिया विज्ञान का मुख्य स्रोत तात्कालिक अनुभव या अस्तित्व है।

अस्तित्ववाद अपने सभी रूपों में, उन समस्त सामाजिक-बौद्धिक विचारधारा, व्यवहार और शक्तियों का विरोध करता है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को नष्ट करते हैं। यह हमारा ध्यान हमारी आन्तरिक व्यक्तिनिष्ठ, अस्तित्वपरक समस्याओं की ओर आकर्षित करता है। यह मनुष्य की व्यक्तिगत कुण्ठा, पीड़ा, उसका दुर्भाग्य, उसका त्रासद, उसकी अर्थहीनता और सारहीनता की ओर ध्यान खींचता है। हमारे सामने ऐसे वास्तविक

Scanned with CamScanner

व्यक्ति का चित्र खींचता है जो पूर्णरूप से अकेला, एकान्त में खड़ा अर्थहीन शून्य ताक रहा है। यह दर्शन हमें यह स्वीकार करने को विवश करता है कि किस प्रकार हताशा की कुण्ठा हममें शक्ति की इच्छा या महत्वाकांक्षा को जन्म देती है; किस प्रकार तानाशाही शक्ति सुरक्षा का विश्वास दिलाकर हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण करती है। हम आर्थिक-राजनीतिक मशीन के कल-पुर्जे हैं; हम, हम नहीं हैं, हमारा 'स्व' से विलगाव हो चुका है; हम अपनी पहचान खो चुके हैं।

अस्तित्ववाद के आधार : अलगाववाद (Basis of Existentialism : Alienation)

आधुनिक समाज व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था के पश्चिमी आलोचकों द्वारा जिन प्रमुख समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है, उनमें सबसे प्रमुख समस्या व्यक्ति (Individual) की है जो एक संगठित पूंजीवादी समाज (Organised capialist society) तथा एक केन्द्रीकृत राज्य (Centralised State) के द्वारा लगातार कुचला जा रहा है और जिसके परिणामस्वरूप उसने अपने भीतर एक अलगाव (Alienation) की भावना का विकास कर लिया है।

आधुनिक समाज और राज्य व्यवस्था अत्यन्त व्यापक और पेचीदा है, परन्तु उसके गठन का समस्त आधार उत्पादन की कुशलता पर टिका हुआ है जिसके सन्दर्भ में व्यक्ति एक उत्पादक मात्र बनकर रह गया है और निजी भावात्मक सम्बन्धों का कोई अर्थ नहीं रह गया है।

यद्यपि पश्चिमी समाज अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है, वस्तुओं का उत्पादन प्रचुर मात्रा में करता है, वहां समस्त भौतिक सुख-सुविधा उपलब्ध है, वहां पूंजीपति समस्त उत्पादन के साधनों का स्वामी है इसलिए वह समस्त स्थिति का उपयोग अपनी निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए करता है तथापि अलगाव (Alienation) की समस्या और अधिक गम्भीर रूप से पायी जाती है।

जहां तक एक आम व्यक्ति का प्रश्न है वह तो इस मशीनी युग में अलगाववाद के तनाव से हमेशा ग्रसित रहता है। वह अपना सारा समय रोजी-रोटी की चिन्ता में तथा बेहतर आर्थिक जीवन की खोज में भटकने में ही बिता देता है। वह अपने जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को जुटाने और अपनी रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति में इतना अधिक चिन्तित और व्यस्त रहता है कि उसे अपने भीतर झांकने अथवा अपने जीवन को एक उच्च नैतिक और सांस्कृतिक स्तर तक उठाने का बिल्कुल ही समय नहीं मिलता।

आज का व्यक्ति अकेला और बिल्कुल सूना है। अन्य व्यक्तियों से उसका तादात्म्य और जीवन्त सम्पर्क टूटता जा रहा है। उसका अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क होता है कारखानों में, दुकान पर, ट्रामों और सिटी बसों में, भीड़ में अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते-जाते अथवा किसी जुलूस एवं आन्दोलन में भाग लेते समय। ये स्थान परिवार और गांव की चौपाल की भांति जीवन्त सम्पर्क के केन्द्र नहीं हैं। अतः व्यक्ति और समाज के बीच की दूरी अनवरत बढ़ती जा रही है और व्यक्ति दिन-प्रतिदिन अपने को अधिक अकेला एवं समाज द्वारा परित्यक्त महसूस करता है। आज का व्यक्ति अपने को दिन-प्रतिदिन के कार्यों से ही असम्बद्ध नहीं पाता, अपितु वह अपने आपको समाज से, राज्य से, परिवार से, उन लोगों से जिनके साथ वह काम करता है और यहां तक कि वह अपने आप से भी विच्छिन्न पाता है।

आज के समाज का राजनीतिक संगठन भी इतना अधिक केन्द्रीकृत और औपचारिक (Centralised and Formal) बन गया है कि यदि व्यक्ति अपने प्रयत्नों द्वारा उच्च पद पर पहुंचने में सफल भी हो जाए तो भी उसकी स्थिति मशीन के एक पुर्जे से अधिक नहीं होती और उस व्यवस्था को वह आंशिक रूप से भी प्रभावित नहीं कर सकता।

प्राचीनकाल में व्यक्ति परिवार और समुदाय जैसे पुराने समूहों में आमोद-प्रमोद और हर्ष-उल्लास के साथ रहता था; एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझता था; एक-दूसरे के साथ निकटता और भावात्मक लगाव महसूस करता था; उसका आज तीव्रता से लोप हो रहा है, इससे भी वह अलगाव महसूस करने लगा है।

आज दुनिया में ऐसे अनेक देश हैं जिनके पास संहार करने वाले भयंकर आणविक शस्त्रों का विशाल भण्डार है। व्यक्ति समाचार-पत्रों के माध्यम से इन शस्त्रों की विनाशक शक्ति के बारे में पढ़ता रहता है। वह वह समझने लगा है कि दुनिया के किसी भी भाग में यदि किसी भी कारण से छोटा-मोटा युद्ध भड़क उठे तो वह आणविक युद्ध में परिवर्तित हो सकता है। 'अतिमारकता के इस युग में' (The age of Overkill) व्यक्ति सतत चिन्तित रहता है और तनाव में अपना समय बिताने के लिए विवश रहता है।

Scanned with CamScanner

19वीं शताब्दी को व्यक्तिवाद का स्वर्णयुग माना जाता है और अनेक दार्शनिकों ने इस धारणा का प्रतिपादन किया था कि व्यक्ति अत्याचार और अविवेक की उन शृंखलाओं से धीरे-धीरे मुक्त हो रहा है जिनमें वह शताब्दियों तक जकड़ा हुआ था। इन दार्शनिकों ने कहा था कि व्यक्ति सामाजिक रूढ़ियों और रीति-रिवाजों से एवं नैतिक बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास कर रहा है। उस समय स्वतन्त्रता, प्रगति, विवेक की बात बड़े जोर-शोर से की जाती है। परन्तु 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही अव्यवस्था, विघटन, पतन, असुरक्षा, विशृंखलता, आतंकवाद शब्द प्रचलित होने लगे और व्यक्ति का जीवन संकट में दिखायी देने लगा। आज हम ऐसे व्यक्ति को देखते हैं जो समाज से उखड़ा हुआ है, समाज में जिसका अपना कोई स्थान नहीं है। आज का व्यक्ति एकाकी और दिग्भ्रमित व्यक्ति है जो अपने अस्तित्व (Existence) की सार्थकता तलाश कर रहा है। रॉबर्ट निस्बत के शब्दों में, "20वीं शताब्दी की प्रमुख समस्या समाज से विच्छिन्न तथा असम्बद्ध व्यक्ति की है।" इतिहासकार टॉयनबी के शब्दों में, "सर्वहारा की प्रमुख विशेषता न तो गरीबी है, न किसी निम्न वर्ग के परिवार में जन्म लेना, परन्तु वह चेतना है और आक्रोश की वह भावना है जो इस चेतना के द्वारा अनुप्राणित होती है कि वह समाज में अपने परम्परागत स्थान से वंचित कर दिया गया है और उस मानव समुदाय से, जिसे वह अपना वास्तविक घर मानता था, बहिष्कृत कर दिया गया है और यह आवश्यक नहीं है कि आर्थिक उपलब्धियों के प्राप्त हो जाने पर सर्वहारा होने की इस मानसिक स्थिति से उसे छुटकारा मिल सके।" निस्बत ने इसे नियति का एक क्रूर परिहास माना है कि एक ऐसे युग में जब वातावरण पर मनुष्य का नियन्त्रण सबसे अधिक है, वह अपने आपको दुर्बल और निःसहाय पाता है।

मीहान के अनुसार, ऐसे समाज के मनुष्य की निम्न विशेषताएं हैं :

1. वह अकेला और असहाय है तथा हताश होकर अपने भीतर एक मूल्य व्यवस्था खोज रहा है।
2. वह स्वयं अपने से तथा समाज से अलगाव और बिलगाव अनुभव कर रहा है।
3. उसका दमन कर दिया गया है और वह घुटन अनुभव कर रहा है।
4. वह सत्य और न्याय के पथ से विमुख हो गया है।

अस्तित्ववाद से अभिप्राय (Meaning of Existentialism)

अस्तित्ववादी चिन्तन को परिभाषित करना कठिन ही नहीं असम्भव है। इसके दो मुख्य कारण हैं। सर्वप्रथम तो यह कि अस्तित्ववादी विचारक जान-बूझकर व्यवस्थित लेखन और चिन्तन नहीं करते। दूसरा कारण यह है कि वे समस्याओं और प्रश्नों के उत्तर नहीं खोजते। उनके लेखन का उद्देश्य यह नहीं होता कि हमारे ज्ञान का भण्डार बढ़े। उनके चिन्तन का मूल्यांकन इस बात से नहीं किया जा सकता कि उन्होंने आपको कौन-से नए विचार दिए। उनका मूल्यांकन इस बात से किया जा सकता है कि उनके चिन्तन ने आप पर क्या प्रभाव डाला। आपकी भावनाओं, अभिप्रेरणाओं, आशाओं और निराशाओं में परिवर्तन कर आपको क्या कर दिया (What it was done to you?)।

अस्तित्ववाद एक ऐसी विचारधारा है जो व्यक्ति को अपने 'अस्तित्व' (Existence) का बोध कराती है। मीहान के अनुसार, अस्तित्ववाद वैज्ञानिक बुद्धिवाद, अवैयक्तीकरण, तानाशाही व्यवस्था और अन्धविश्वास के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। एडवर्ड बर्न्स के अनुसार, अस्तित्ववाद विचारों के दर्शन और वस्तुओं के दर्शन की पराकाष्ठाओं के विरुद्ध मानव के दर्शन की प्रतिक्रिया है। अस्तित्ववाद का आग्रह वातावरण पर नहीं व्यक्ति पर है। इसके अनुसार वातावरण व्यक्ति को नहीं बनाता, व्यक्ति स्वयं अपने आपको बनाता है।

अस्तित्ववाद की रुचि मनुष्य को समझने, उसकी व्याख्या करने, उसे संसार के सामने साहस के साथ खड़े होने का मार्ग तलाश करने में सहायता देने और उसके जीवन को जीने योग्य बनाने में है। सार्त्र के शब्दों में, "अस्तित्ववाद से हमारा अभिप्राय एक ऐसे सिद्धान्त से है जो मनुष्य के जीवन को सम्भव बनाता है और साथ ही साथ इस बात की घोषणा भी करता है कि प्रत्येक सत्य और प्रत्येक कार्य को मानवीय वातावरण में और मानवीय वैयक्तिकता के आधार पर समझा जा सकता है।"

अस्तित्ववाद अस्तित्व की प्राथमिकता या सर्वोपरिता की पुष्टि करता है। अस्तित्ववादी की तर्कों, सम्भावनाओं और अमूर्त संकल्पनाओं में कोई रुचि नहीं होती, वह गणितज्ञ या तर्कशास्त्री या आदर्शवादी व्यक्ति से बहुत दूर रहता है, उसका एकमात्र सम्बन्ध उस वस्तु से है जो मौजूद है वास्तविक रूप में अस्तित्व के प्रमाण में है। अस्तित्व कोई विशेषता नहीं है, बल्कि सभी विशेषताओं की वास्तविकता है। [illegible]

Scanned with CamScanner

के अनुसार, अस्तित्ववाद अपनी मूल पृष्ठ की वस्तु के रूप में चेतना पर अस्तित्व की प्राथमिकता का द्योतक है। अपनी एक रचना में उसने लिखा है, मानव सबसे पहले मानव है, बाद में वह यह है या वह है। मानव को अपने लिए अपना ही सार निर्मित करना चाहिए।

सार्त्र के अनुसार, व्यक्ति वनस्पति अथवा गोभी का फूल नहीं है, जिसका विकास सर्वथा वातावरण की स्थितियों के अनुसार ही होता है। उसके पास अपना मार्ग स्वयं चुनने की क्षमता है। उसका अनुभव उसके स्वयं का अनुभव है, उसके कार्य उसके अपने स्वयं के कार्य हैं और अपना जीवन स्वयं जीकर और अपना मार्ग स्वयं चुनकर वह अपने मूल्यों का निर्माण भी स्वयं ही करता है। वह अपने कार्यों के लिए स्वयं ही सम्पूर्ण रूप से उत्तरदायी है।

वस्तुतः अस्तित्ववाद में अनेक विचारधाराओं, रोमांसवाद, नाशवाद, संशयवाद तथा परिणामवाद का मिश्रण है। कभी-कभी यह मुक्तिदायी दर्शन होने का दावा भी करता है। यह निराश के अयोग्य जगत से बच निकलने की आवश्यकता पर विशेष बल देता है। स्वयं व्यक्ति द्वारा अपने सन्तोष के लिए सृजन मूल्यों के अतिरिक्त अन्य सभी मूल्यों का निषेध करने के कारण इसे नाशवादी विचारधारा भी कहा जाता है। नैतिकता और धर्म के क्षेत्र में निरपेक्ष का खण्डन करने के कारण इसे सापेक्षवादी तथा संशयवादी विचारधारा भी माना जाता है।

संक्षेप में, अस्तित्ववाद विचारकों का ध्येय स्वतन्त्रता को एक लक्ष्य की भांति प्रतिष्ठित करना है तथा मनुष्य को कर्म की ओर प्रवृत्त करना है। अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि राजनीतिशास्त्र पर चिन्तन निस्सार है। अस्तित्ववादी चिन्तन ने हीगल के दर्शन तन्त्र के विरोध स्वरूप एक प्रतिक्रिया के रूप में जन्म लिया था। अस्तित्ववादी दर्शन ने व्यक्ति को पुनः दार्शनिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु बना दिया। इसकी मान्यता है कि व्यक्ति के अस्तित्व, चेतना, अनुभव व भावनाएं ही स्वयं के व्यक्ति के लिए और दर्शन के लिए महत्वपूर्ण विषय है।

अस्तित्ववाद के अभ्युदय के कारण (Causes for the Emergence of Existentialism)

अस्तित्ववादी विचारधारा के अभ्युदय के निम्नलिखित कारण हैं :

1. सुसंगठित, पूंजीवादी समाज और केन्द्रीकृत राज्य व्यवस्था में व्यक्ति की स्थिति मशीन के एक पुर्जे के समान हो गई, अतः उसे अपने अस्तित्व का बोध कराया जाए।

2. पूंजीवादी समाज में बड़े-बड़े विशाल संगठनों द्वारा उत्पादन विशाल पैमाने पर किया जाता है जिससे व्यक्ति मात्र एक उत्पादक है और व्यक्तिगत सम्बन्धों का लोप हो जाता है, अतः उसे अपनी वैयक्तिक स्थिति का बोध कराना आवश्यक समझा गया।

3. समाज मैक्स वैबरीय बौद्धिक सिद्धान्तों पर संगठित किया जाने लगा है और उत्पादन क्षमता उसका मुख्य मानक होता है। इस सामाजिक संगठन के स्तर पर सदस्यों के मध्य औपचारिक, अमूर्त तथा परिस्थिति पर आधारित सम्बन्ध होते हैं। विकसित समाजों में समृद्धि और उत्पादन का आधिक्य है और वहां अभाव या उत्पादन के बजाय वितरण की समस्या है। सर्वत्र कृत्यों का विशेषीकरण किया जा चुका है और श्रम विभाजन चरम सीमा पर पहुंच चुका है। जीवन को व्यक्ति की इच्छा से परे सांचों में ढाला जा रहा है। ये सांचे बुद्धिवादी हैं। बुद्धिवाद न केवल यातायात, संचार, शहरीकरण, उद्योग और व्यापार में व्याप्त हो गया है अपितु शिक्षा, परिवार और सामाजिक सम्बन्धों में भी प्रवेश कर गया है। अस्तित्ववाद इस बुद्धिवाद के खिलाफ एक चुनौती है।

4. बढ़ती हुई जनसंख्या, जनसंख्या के घनत्व, शहरीकरण, आदि के कारण व्यक्ति के जीवन की एकांतिकता समाप्त होती जा रही है। समूहों और सार्वजनिक सत्ताओं की तुलना में पारिवारिक तथा प्राथमिक बन्धनों का प्रभाव ढीला पड़ता जा रहा है। परिवार, समुदाय और ग्रामीण जीवन के लुप्त होने से व्यक्ति अपना अस्तित्व खोता जा रहा है, अस्तित्ववाद उसे अपने 'होने का' बोध कराने का प्रयास है।

5. आणविक शस्त्रों के आविष्कार से भय तथा आतंक बढ़ा तथा व्यक्ति के मानसिक तनाव में भी वृद्धि हुई है। अस्तित्ववाद तनावग्रस्त और चिन्तित मानव को अपने अस्तित्व का बोध कराकर उसे कर्मनिष्ठता की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास है।

Scanned with CamScanner

अस्तित्ववाद के लक्षण (Salient Features of Existentialism)

अस्तित्ववादी विचारधारा सर्वथा नवीन नहीं है। एथेन्स के स्वर्णिम युग में उसे सिनिक और सिरेनिक दर्शनों में देखा जा सकता है। प्रत्येक युग में कुछ ऐसे विचारक उत्पन्न होते हैं जो अमूर्त चिन्तन और कठोर अनुशासन का विरोध करते हुए चिन्तन की अपेक्षा भावना और संकल्प को अधिक महत्वपूर्ण बताते हैं। राधाकृष्णन ने इसे एक प्राचीन पद्धति का नया नाम माना है। यह मानवीय आत्मा की विशिष्ट प्रकृति पर जोर देता है कि वह न तो एक वस्तु है और न किसी निरपेक्ष की अवास्तविक छाया। अपने अस्तित्व के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है, यही दृष्टिकोण उसकी स्वतन्त्रता का स्रोत है। 'अस्तित्ववाद' के प्रमुख 'लक्षण' या 'मान्यताएं' निम्नलिखित हैं :

1. **अमूर्त चिन्तन की अस्वीकृति**—अस्तित्ववाद ऐसी विचारधारा है जो सभी प्रकार के अमूर्त चिन्तन को अस्वीकार करता है। सभी अस्तित्ववादी विचारक अमूर्त बुद्धिवाद को अस्वीकृत करते हैं और इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं कि समस्त दर्शन को व्यक्ति के जीवन और अनुभव से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, 'अस्तित्ववाद, विवेक के युग' के विरुद्ध एक कड़ी प्रतिक्रिया है जिसमें रूसो जैसे महान् विचारकों ने विवेकशील व तार्किक होने में गौरव महसूस किया और इस प्रकार इस उक्ति को पुनर्जीवित किया कि 'मानव एक विवेकशील प्राणी है।'

अस्तित्ववादी विचारक इस बात का प्रतिवाद करते हैं कि इस विश्व में कोई एक विकासशील बौद्धिक सत्ता शासन करती है। वस्तुतः यह जगत न तो कोई ऐसी व्यवस्था है और न उसमें कोई बौद्धिक प्रतिमान पाए जाते हैं। वे बुद्धिवाद का खण्डन करते हैं। व्यक्ति के पास ऐसी कोई बौद्धिक योजना नहीं होती जिसको लेकर वह जगत का, विशेषतः सामाजिक जगत का सामना कर सके। विवेक और तर्क उसे पतन, भ्रान्ति और विनाश की ओर ले जाते हैं।

रोजर हेजेल्टन के अनुसार, अस्तित्ववाद तर्क बुद्धिवाद के सभी रूपों का विरोध है, क्योंकि तर्क बुद्धिवादियों का यह विश्वास भ्रामक है कि वास्तविकता को तर्क बुद्धि या बौद्धिक साधनों से समझा जा सकता है। अस्तित्ववाद इस अभिमत का सशक्त खण्डन करता है कि सत्य की खोज तार्किक तन्त्रों (Logical Systems) द्वारा की जा सकती है।

2. **व्यक्ति की प्रमुखता**—अस्तित्ववादी विचारक समग्र जगत से सम्बन्धित वैचारिक व्यवस्था के केन्द्र में स्थित व्यक्ति के अस्तित्व को समझाने का प्रयास करते हैं। उनके लिए व्यक्ति का अस्तित्व प्रमुख है। विचारों से उसे समझना अपर्याप्त होता है, क्योंकि उसे विचारों में नहीं बांधा जा सकता। कर्म और चयन का महत्व उसके कर्ता की दृष्टि से आंका जाना चाहिए न कि पर्यवेक्षक की।

अस्तित्ववादियों के अनुसार, सार या तत्व और अस्तित्व के बीच विभेदक रेखा खींची जानी चाहिए जबकि सार या तत्व वस्तुओं के शुद्ध रूप को दर्शाता है। जिस पर अमूर्त ढंग से विचार किया जा सकता है, अस्तित्व का सम्बन्ध मानव के वास्तविक व्यवहार या अनुभव अर्थात् ठोस परिघटना से है। इस प्रकार, "जबकि तत्ववाद का सम्बन्ध मानव की मानवता और घोड़े के घोड़ेपन से है, अस्तित्ववाद का अर्थ मानव की मानवता से नहीं, बल्कि अमुक व्यक्ति से है जिसे मैं जानता हूं या उस विशेष घोड़े से है जो मेरा है और जिसे मैं प्यार करता हूं।"

अस्तित्ववादी यह स्वीकार करते हैं कि आदर्शवाद (विचारवाद) का सम्बन्ध विचारों या संकल्पनाओं या अमूर्त स्वरूप के व्यक्ति से है और इस प्रकार यह तत्व या सार का दर्शन बन जाता है। इसके विपरीत अस्तित्ववाद, जैसा सार्त्र ने कहा है, इस उक्ति में निहित है कि 'अस्तित्व सार से पहले आता है।'

3. **अनुभवात्मक एवं जीवन के यथार्थ पर आधारित**—अस्तित्ववादी विचारधारा का आधार मानव का वास्तविक आचरण अथवा उसके यथार्थ जीवन का अनुभव है। यह अनुभव की नींव पर स्थित है। यह नियतिवाद के मन्तव्य को अस्वीकार करता है जिसका कार्य-कारण सम्बन्ध से लगाव है। किसी अतिप्राकृतिक निरपेक्ष या अनुभवातीत रूप से किसी विश्वास को नहीं बल्कि, व्यक्तिगत अनुभव को मूल मान्यता दी जाती है।

ब्रैण्टनो ने व्यक्ति को सबसे अलग करके उसके विश्वास, भावनाओं, संकल्पों, आदि पर विचार किया। विश्वास विश्वास है, क्रोध क्रोध है, आदि-आदि। उसे सहचारी मनोविज्ञान की तरह भौतिक या प्राकृतिक शब्दावली में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। सार्त्र ने अभिप्रायात्मकता की व्याख्या करते हुए बताया है

Scanned with CamScanner

कि मेरे अपने बारे में मेरा ज्ञान सदैव दूसरों के मेरे बारे में ज्ञान से भिन्न होगा। मैं कभी वस्तु नहीं बन सकता और ऐसा मानकर प्राप्त किया गया ज्ञान मेरा विकृतीकरण मात्र होगा।

4. **अलगाव और निराशा में अस्तित्व की खोज**—अस्तित्ववाद के उद्भव का कारण है व्यक्ति के मन में व्याप्त निराशा और कुण्ठा जिससे वह अपने आपको समाज और राज्य व्यवस्था से विच्छिन्न महसूस करता है।

5. **मानवतावादी दर्शन**—अस्तित्ववाद मानवतावादी दर्शन है अस्तित्ववादियों ने मानव की स्थिति में से ही मानव के मूल्यों को ढूंढ निकालने का प्रयत्न किया है। इसका ध्येय प्रत्येक व्यक्ति में यह चेतना जाग्रत करना है कि वह क्या है और उसके अस्तित्व के क्या उत्तरदायित्व हैं।

6. **मानव स्वतन्त्रता का दर्शन**—राजनीति दर्शन के परिप्रेक्ष्य में अस्तित्ववाद मानव स्वतन्त्रता का दर्शन है। मानव तभी मानव है जब इसे स्वतन्त्रता प्राप्त हो और स्वतन्त्र जीवन वह जिसमें वह कार्यों का चयन कर सकता है—ऐसे कार्य जो स्वतन्त्रता को न केवल उसका वास्तविक अर्थ प्रदान करते हैं बल्कि उसे समृद्ध भी करते हैं। अस्तित्ववादियों की यह मान्यता है कि यदि हम वैसे कार्य करें जैसा अन्य लोग चाहते हैं तो हम आन्तरिक या बाह्य रूप से अदृश्य मजबूरियों के आगे घुटने टेक देते हैं और इस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता को मिटा देते हैं। स्वतन्त्रता की श्रेष्ठ परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि हम अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार कार्य करें लेकिन यदि हमें फिर दास नहीं बनना है तो हमें इसके लिए तत्पर रहना चाहिए कि हम अपने वास्तविक स्वभाव के अनुसार कार्य करें जिससे अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकें, अन्यथा हम देखेंगे कि हम ऐसे कार्यों को करने पर मजबूर हो रहे हैं जो इस स्वभाव का उल्लंघन करते हैं।

7. **भावात्मक स्वतन्त्रता का पोषण करने वाला दर्शन**—अस्तित्ववादी निषेधात्मक स्वतन्त्रता के बजाए भावात्मक स्वतन्त्रता के समर्थक हैं। सार्त्र के अनुसार, "स्वतन्त्रता की कामना करते हुए, हमें यह विदित होता है कि यह पूर्णता अन्य लोगों की स्वतन्त्रता पर निर्भर होती है और अन्य लोगों की स्वतन्त्रता हमारी स्वतन्त्रता पर निर्भर है। .... ज्योंही दूसरों की स्वतन्त्रता के साथ सम्बन्ध होता है, मुझे यह मानना पड़ता है कि यदि मुझे स्वतन्त्रता चाहिए तो साथ ही दूसरों को भी वही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। मैं स्वतन्त्रता को अपने लक्ष्य के रूप में तभी ले सकता हूं जबकि मैं दूसरों की स्वतन्त्रताओं को भी अपने लक्ष्य के रूप में लूं।" इस प्रकार अस्तित्ववादी उस असीम या निरपेक्ष स्वतन्त्रता की बात नहीं करते जो स्वच्छन्दता की सीमा तक जाती है। स्वतन्त्रता की संकल्पना को मनमानेपन के रूप में परिवर्तित नहीं होने देना चाहिए बल्कि इसे नैतिकता के पूर्ण क्षेत्र, उत्तरदायित्व और सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए। वे स्वतन्त्रता के विचार को निषेधात्मक के बजाय भावात्मक रूप में अध्ययन करने पर जोर देते हैं।

8. **व्यक्ति की यान्त्रिकी व्याख्या का विरोध**—अस्तित्ववाद की एक विशेषता यह है कि यह उन सब सिद्धान्तों का विरोध और खण्डन करता है जो मनुष्य को एक वस्तु (आब्जेक्ट) मानते हैं और मनुष्य को व्यावहारिक रूप से कुछ क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का योग मानते हैं। दार्शनिक क्षेत्र में अस्तित्ववाद व्यक्ति की यांत्रिकी या मैकेनिकल और प्रकृतिवादी या नेचुरलिस्टिक व्याख्या स्वीकार नहीं करता। सामाजिक विज्ञान की दृष्टि से अस्तित्ववाद सामाजिक संगठन के ऐसे सभी प्रतिमानों का विरोध करता है जिसमें सार्वजनीन मनोवृत्ति (Mass mentality) व्यक्ति की स्वतः स्फूर्ति और अनुपमता (Uniqueness) को नष्ट कर दे। व्यक्ति की स्वतः स्फूर्ति और अद्वितीयता ही उसकी स्वतन्त्रता का एकमात्र लक्षण है। सामाजिक संगठन चाहे पूंजीवादी प्रजातन्त्रात्मक हो या तानाशाही हो, दोनों में ही सार्वजनीन मनोवृत्ति या सामूहिक मन (Group mind) व्यक्ति को स्वचालित अनुरूपता के लिए विवश कर देता है और व्यक्ति की स्वतःस्फूर्ति और अद्वितीयता नष्ट हो जाती है।

9. **व्यक्ति को अन्तर्विरोधों से युक्त मानना**—अस्तित्ववाद व्यक्ति को अनेकार्थक (Ambiguous) मानता है। मानव परिस्थिति को वह तनावों और अन्तर्विरोधों से भरपूर मानता है। इन अन्तर्विरोधों को विज्ञान, तर्क, दर्शन, व्यवस्थित चिन्तन, आदि से दूर नहीं किया जा सकता।

10. **व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ सत्य में भेद करना**—अस्तित्ववाद व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ सत्य में भेद करता है, वह व्यक्तिनिष्ठता को वस्तुनिष्ठता की तुलना में अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक मानता है। अस्तित्ववादी यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान, तर्क सामान्य बुद्धि की सहायता से वास्तविक वस्तुनिष्ठ सत्य

Scanned with CamScanner

का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पर उनका कथन है कि मूलभूत सत्य एवं आत्मपरक घटनाओं को केवल अनुभूतियों द्वारा ही जाना या समझाया जा सकता है।

11. **राज्य के विरुद्ध विद्रोह**—अस्तित्ववाद केन्द्रीकृत राज्य व्यवस्था, जिसने व्यक्ति में अलगाव उत्पन्न किया है, का विरोधी है। निम्बत के अनुसार, केन्द्रीकृत राज्य ने व्यक्ति के आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक और स्थानीय सभी प्रकार की निष्ठाओं पर आक्रमण किया है। एक सर्वशक्तिशाली केन्द्रीकृत राज्य व्यक्ति से उसका सब कुछ ले लेता है, अतः अस्तित्ववादी आधुनिक राज्य को सन्देह और शंका की दृष्टि से देखते हैं।

संक्षेप में, अस्तित्ववाद मनुष्य को भाग्य के हाथों में खिलौना बनने से बचाना चाहता है। वह उसे नियतिवादी विचारों से छुटकारा दिलाकर स्वतन्त्र और उत्तरदायी मानव प्राणी बनाना चाहता है। मनुष्य कोई घास-फूस या साग-सब्जी नहीं है जिसे दूसरों के द्वारा बोया और उगाया जाता हो। वह अपना निर्णय अपने चयनों द्वारा करता है। वह चयन कर सकता है और अपने को जैसा बनाना चाहता है बना सकता है। वह मनुष्य को सुखी बनाने का तो दावा नहीं कर सकता, किन्तु वह उसे प्रतिष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार कर सकता है। व्यक्ति को न तो ईश्वर ने पैदा किया है और न ईश्वर ने कोई नैतिक शिक्षा दी है। वह अपने चयन तथा असफलताओं और पापों के लिए पूरी तरह जिम्मेदार है। उसकी मनोव्यथा इस कारण भी है कि उसे अकेला होते हुए भी दूसरों की दृष्टि में रहते हुए निर्णय लेने पड़ते हैं। यही उसका वास्तविक अस्तित्व है।

अस्तित्ववाद यूरोपीय देशों में पायी जाने वाली मानवीय कुण्ठा और निराशा का परिणाम था। अस्तित्ववादी विचारक स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र में विश्वास करते थे और इन आदर्शों के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार थे। व्यक्ति को समाज में उसके पुराने आदर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर देना उनका लक्ष्य था।

अस्तित्ववादी विचारक
(THINKERS OF EXISTENTIALISM)

अस्तित्ववादी विचारकों में कार्ल जैस्पर्स, सोरन किर्केगार्द, गैब्रिल मार्सेल, अलबर्ट कामू, मार्टिन हीडेगर तथा ज्यां पॉल सार्त्र के नाम उल्लेखनीय हैं। कार्ल जैस्पर्स और मार्टिन हीडेगर जर्मन अस्तित्ववादी हैं तो मार्सेल, कामू और सार्त्र फ्रेन्च अस्तित्ववादी विचारक हैं। आमतौर से इस तथ्य को भुला दिया गया कि मूलतः अस्तित्ववाद का उदय एक ईसाई दर्शन के रूप में हुआ था और इसे सार्त्र के अस्तित्ववाद का पर्याय मान लिया गया।

सामान्य रूप से अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि राजनीतिशास्त्र पर चिन्तन निस्सार है। अस्तित्ववादी चिन्तन ने हीगल के दर्शन तन्त्र के विरोध स्वरूप एक प्रतिक्रिया के रूप में जन्म लिया था। अस्तित्ववादी दर्शन ने व्यक्ति को पुनः दार्शनिक चिन्तन का केन्द्रबिन्दु बना दिया। इसकी मान्यता यह है कि व्यक्ति के अस्तित्व, चेतना, अनुभव व भावनाएं ही, स्वयं व्यक्ति के लिए और दर्शन के लिए महत्वपूर्ण विषय हैं।

हीगल ने व्यक्ति को सामाजिक सावयव का एक अभिन्न अंग बना दिया था। उसके विरोध में किर्केगार्द ने, जिसे अस्तित्ववाद का जनक माना जाता है, व्यक्ति को सामाजिक, सामुदायिक जड़ों से असम्बद्ध, पूर्ण रूप से व्यक्तिनिष्ठ रूप से प्रस्तुत किया।

कतिपय प्रमुख अस्तित्ववादी विचारकों के चिन्तन का विवेचन करने से हमें अस्तित्ववादी दर्शन की मूल मान्यताएं समझने में आसानी होगी।

सोरन किर्केगार्द (Soren Kierkagard)

सोरन किर्केगार्द (1813-1855) का जन्म डेनमार्क में हुआ था और उन्हें एक धार्मिक दार्शनिक के रूप में जाना जाता है। कई विद्वान किर्केगार्द को अस्तित्ववाद का जनक मानते हैं। एक आन्दोलन के रूप में अस्तित्ववाद की जड़ें किर्केगार्द की रचनाओं में पायी जाती हैं।

यह डेनिश अस्तित्ववादी स्वभाव से धार्मिक व्यक्ति था और उसने भावनाओं तथा बुद्धिवादी निराशा से उत्पन्न आधारों पर ईसाई धर्म को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उस समय ईसाई धर्म को बौद्धिक रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा था जबकि किर्केगार्द की मान्यता थी कि ईसाई धर्म को बुद्धि के द्वारा नहीं, केवल भावना के आधार पर समझा जा सकता है। उसकी दृष्टि में सत्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता, वह व्यक्तिमूलक है और उसकी उत्पत्ति मनुष्य के हृदय की गहरी आकांक्षाओं से होती है। क्राइस्ट में जनसाधारण

Scanned with CamScanner

का विश्वास इस कारण नहीं है कि वे तर्क द्वारा यह सिद्ध करने की स्थिति में हैं कि उसने क्रूस पर मरना इस कारण स्वीकार किया था कि वह मानवता को उसके पापों से मुक्त करना चाहता था। क्राइस्ट में उनकी जो आस्था है उसके पीछे एक निराशा की भावना है।

किर्केगार्द स्वयं निराशा, पाप या अज्ञात अपराध की काली छाया से आतंकित रहस्यवादी था। उसने 19वीं शताब्दी की बौद्धिक एवं वैधानिक प्रगति की श्रेष्ठता को मानने से इन्कार कर दिया। यही कारण है कि 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक उसे विस्मृति के गर्भ में पड़े रहना पड़ा। किन्तु 20वीं शताब्दी की निराशाएं उसके पूर्वानुभवों से चमत्कृत हो गई। उसने प्लेटो के अस्तित्व और सत्य में अन्तर किया और अस्तित्व को वास्तविकता बताया। सत्य की खोज परिभाषामूलक, बुद्धि प्रधान, नियत, अमूर्त और आवश्यक मानी गई। अस्तित्व की वास्तविकता को पहचानने के लिए पराबुद्धिवादी मुठभेड़ की आवश्यकता है। अस्तित्व मूर्त, स्वाभाविक रूप से ज्ञातव्य, स्वतन्त्र और व्यक्तिनिष्ठ माना गया। संकटों में अस्तित्व ही वास्तविकता बनकर रहता है और सत्य का मुलम्मा उतर जाता है। इसी कारण निराशा, तनाव, आक्रोश, भय, आदि का सामना करना पड़ता है। इस तरह के अन्धेरे में छलांग मारने से भय लगता है और उससे बचने के लिए धर्म तथा क्राइस्ट के पुनरागमन, आदि में विश्वास एकमात्र सहारा बन जाता है। सच्ची ईसाइयत विश्वास, भावना और श्रद्धा पर आधारित है, बुद्धि और विवेक से उसकी व्याख्याएं करना निरर्थक है।

अपनी पहली कृति 'आईदर आर' (यह या वह) में किर्केगार्द ने चिन्तन के बारे में हीगल के विचारों को चुनौती दी। अपनी दूसरी रचना 'दि सिकनेस अन टु डेथ' (*The Sickness unto Death*) में उसने नैराश्य के अधिक विशिष्ट लेकिन अधिक दुखद रूपों को पहचाना, जिसका अनुभव उन लोगों द्वारा किया जाता है जो नैतिकता के अनुसार रहते हैं, लेकिन नैतिकता न उनसे निपट सकती है और न उनका उपचार कर सकती है।

किर्केगार्द को आधुनिक अस्तित्वाद का जनक कहा जाता है क्योंकि उसने मानव पर अधिक बल दिया। उसके शब्दों में, "मानव आत्मा है, लेकिन आत्मा क्या है? आत्मा स्वयं अहं है......।" उसने बुर्जुआ समाज के उन मूल्यों की भी आलोचना की जिन्होंने मानव के महत्व और गरिमा को कम किया। उसने अमूर्त दर्शन पर प्रहार करते हुए स्पष्ट कहा कि दर्शन को अमूर्त नहीं, बल्कि व्यक्तिगत अनुभव और ऐतिहासिक स्थिति पर निर्भर होना चाहिए जिससे वह कल्पना का नहीं बल्कि हरेक मानव के जीवन का आधार बन सके।

कार्ल जैस्पर्स (Karl Jaspers)

अस्तित्ववादी दर्शन के प्रवर्तकों में कार्ल जैस्पर्स का नाम उल्लेखनीय है। उसे किर्केगार्द का सबसे निष्ठावान अनुयायी माना जाता है। वह व्यवसाय की दृष्टि से एक दार्शनिक या धर्मशास्त्री नहीं था, अपितु एक चिकित्सक और मनोरोग विज्ञान का विशेषज्ञ था। फिर भी उसे अस्तित्ववादी दर्शन का आधार स्तम्भ माना जाता है।

जैस्पर्स के चिन्तन में मानव का केन्द्रीय स्थान है। इसी कारण उसकी विचारधारा मानववादी अस्तित्ववाद कहलाती है। जैस्पर्स के चिन्तन में अस्तित्व का निचले स्तर पर प्रथम रूप वस्तुपरक जगत है। यह अस्तित्व वस्तुनिष्ठ होने के कारण बाध्यतः स्वीकार किया जाता है। अस्तित्व का दूसरा उच्चतर रूप भावना, अहं, अस्मि या मात्र अस्तित्व है जिसे वैज्ञानिक क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले वस्तुपरक अस्तित्व की परिभाषा से नहीं समझा जा सकता। अस्तित्व का तीसरा रूप वह है जिसके अनुसार व्यक्ति अपने अहं (आई) को अनुकूलित करता है। यह पराअस्तित्व होता है और जैस्पर्स ने इसे स्वयं अस्तित्व (आत्मना अस्तित्व) के नाम से पुकारा है। इसमें प्रथम एवं द्वितीय रूप समाहित हो जाते हैं।

जैस्पर्स वर्तमान विशाल समाजों में मनुष्य के व्यक्तित्व को भयाक्रान्त पाता है। राजनीतिक दावे अमूर्त, सामान्य तथा धार्मिक परम्पराओं और रूढ़िगत धारणाओं से ओत-प्रोत होते हैं जिनको फासीवादी अथवा बोल्शेविक तरीकों से बार-बार दोहराया जाता है। उसने स्पष्ट कहा, "व्यक्ति की प्रगति तभी सम्भव होती है जब अन्य लोग भी प्रगति करें और अन्यों की हानि मेरी अपनी हानि भी है.....स्वयं होना और सच्चा होना बिना किसी शर्त के अपेक्षा में होने के सिवाय और कुछ नहीं है।" उसने स्पष्ट कहा कि समाज की यान्त्रिकी अभिधारणा ने व्यक्ति को 'मार्जिनल (मास मैन) बनाकर व्यक्ति का पतन कर दिया है। जैस्पर्स के अनुसार योग्यता और क्षमता के अनुसार समाज में वर्गीकरण होना चाहिए। जैस्पर्स ऐसे व्यक्तियों के कुलीनतन्त्र की

Scanned with CamScanner

अनुशंसा करता है जिन्होंने अपने अस्तित्वपरक अनुभवों से जीवन के अर्थ समझ लिए हैं। इस प्रकार जैस्पर्स के विचार वेबिट के अप्रजातन्त्र के समान हैं। तथापि यह कहना भी पूर्ण रूप से उचित नहीं होगा कि जैस्पर्स प्रजातन्त्र विरोधी था। वह एक सुधारक था और प्रजातन्त्र के इस रूप को असह्य समझता था जिसमें व्यक्ति एक सार्वजनिक व्यक्ति (Mass Man) बन जाता है।

गैब्रिल मार्सेल (Gabriel Marcel)

फ्रांस में गैब्रिल मार्सेल को अस्तित्ववादी दर्शन का प्रबल समर्थक माना जाता है। उसका दर्शन वस्तुतः रायस के वैयक्तिक आदर्शवाद से निःसृत है। उसकी विचारधारा हीडेगर और सार्त्र के बजाय किर्केगार्द और जैस्पर्स से मेल खाती है। अपनी कृति 'बीइंग एण्ड हेविंग' (*Being and Having*) में उसने ऐसी समस्याओं को उठाया है जिनका अस्तित्व के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहा है। उसकी विचारधारा को प्रायः ईसाई अस्तित्ववाद कहा जाता है।

वह समस्या और रहस्य में अन्तर करता है। समस्या को वस्तुपरक ढंग से समझा जा सकता है। रहस्य सत्तामीमांसात्मक वास्तविकता है। अस्तित्व उस व्यक्ति से पृथक् करके चिन्तन की वस्तु नहीं बनाया जा सकता।

मार्सेल ने जनसमाज का विरोध किया। उसके अनुसार नैतिकता के ह्रास का कारण ईसाई धर्म का पतन है। उसके अनुसार छोटे-छोटे लघु ईसाई समुदायों से ही अच्छा जीवन सम्भव है। उसने साधारण व्यक्ति की आलोचना की क्योंकि वह सदा सुख की खोज में रहता है। उसकी साधारण व्यक्ति में उतनी रुचि नहीं है जितनी असाधारण में, कलाकार अथवा सर्जनशील व्यक्ति में।

ज्यां पॉल सार्त्र (Jean Paul Sartre)

चिन्तन की अधुनातन प्रवृत्तियों में अस्तित्ववाद के प्रवर्तक जयां पॉल सार्त्र की राजनीति दर्शन में उपस्थिति ऐतिहासिक महत्व रखती है। नोबल पुरस्कार पाने और उसे अस्वीकार कर देने वाले प्रखर चिन्तनशील रचनाकार सार्त्र व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व की अर्थपूर्ण व्याख्या करते हैं।

सार्त्र एक लेखक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, सामाजिक अभिकर्ता, मानव मुक्ति के पैगम्बर, शब्दों के मसीहा—एक अद्‌भुत मिश्रण थे। उनका जीवन इस पूरी शताब्दी की सबसे महानतम् बौद्धिक घटना है। 70 वर्ष तक लेखन कर्म निभाने के बाद, एक के बाद एक सीढ़ियां, परिवर्तन के घुमावदार मोड़—आरम्भ में कल्पना लोक में रहने वाले सार्त्र—बाद में जगत में, सांसारिक घटनाओं में पूरी तरह निमज्जित—वे मानव स्वातन्त्र्य की आखिरी पुकार थे।

ज्यां पॉल सार्त्र का जन्म पेरिस में 1905 ई. में हुआ। उनकी शिक्षा-दीक्षा पेरिस में लहाव्र तथा लाओन नामक विद्यालयों में हुई। बचपन में वह अपनी युवा विधवा मां के साथ पेरिस के अपने छठी मंजिल के मकान में रहते थे। सार्त्र के नाना चार्ल्स श्वाईत्जर, जर्मनी के लिए फ्रांसीसी संस्कृति और फ्रांसीसियों के लिए जर्मन संस्कृति का आदान-प्रदान करते थे। फ्रांसीसी और जर्मन ग्रन्थों से भरा नाना का अध्ययन कक्ष एक सांस्कृतिक स्मारक था जिसके बारे में सार्त्र ने लिखा है, "किताबों के बीच ही मेरी जिन्दगी शुरू हुई और इसमें सन्देह नहीं कि उसका अन्त भी इन्हीं के बीच होगा।" पेरिस के हर मध्यवर्गीय बच्चे की तरह सार्त्र भी छुट्टी बिताने गांव जाया करते, लेकिन उनका यथार्थ रुख गाफ में सार्त्र के घर की छठी मन्जिल पर पुस्तकों के बीच था। उन्होंने लिखा है, "मैं कभी मिट्टी से नहीं खेला, न कभी पेड़-पौधे इकट्ठे किए, न मैंने घोंसले ढूंढे और न चिड़ियों पर पत्थर मारे। पुस्तकें, मेरी चिड़ियां, मेरे घोंसले, मेरे पालतू जानवर, मेरे खेत-खलिहान सब कुछ थीं।"

छः वर्ष की आयु में सार्त्र ने लिखना सीखा और नौ वर्ष की आयु तक वह अपना लेखक होना स्थापित कर चुके थे। अपने प्रारम्भिक वर्षों में सार्त्र हमेशा अकेले रहे, कोई संगी-साथी नहीं। वे वास्तविक जगत से कटे हुए थे। 14 जुलाई, 1935 की 'पापुलर फ्रण्ट' के महान् ऐतिहासिक जुलूस को वे अपने झरोखे से देखते भर रहे। वे नीचे उतरकर जुलूस में शामिल नहीं हुए। वे दार्शनिक थे, जगत से अलगावित अपनी मानस की दुनिया में रहते थे। उन दिनों वे सक्रिय कर्मी नहीं थे क्योंकि वे अराजनीतिक थे, इसीलिए 'पापुलर फ्रण्ट' के लिए मतदान भी नहीं करते थे हालांकि श्रमिक वर्ग के इन आन्दोलनों को वे मानवीय गरिमा की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति मानते थे। स्वभाव से अराजक और अतिवादी सार्त्र हर यथास्थिति के खिलाफ एक दिली सहानुभूति रखते थे और चाहते थे कि बुर्जुआ वर्ग का पूरी तरह से उन्मूलन हो।

Scanned with CamScanner

अथवा दल के लिए व्यक्ति का दमन उसे असह्य है। 1956 में हंगरी की क्रान्ति को कुचले जाने के बाद वह साम्यवादियों से नाता तोड़ लेता है।

सार्त्र ने बौद्धिक की परिभाषा करते हुए कहा कि केवल बौद्धिक कसरत से ही कोई बौद्धिक नहीं हो जाता। इस इंजीनियर बौद्धिक हो सकता है जबकि उसका सारा कार्य श्रम पर निर्भर करता है। व्यावहारिक ज्ञान के प्रविधिकारी अथवा टेक्नोक्रेट उस समय बुद्धिजीवी हो जाते हैं जब उनका ज्ञान सार्वभौमिक उद्देश्य रखते हुए भी किसी विशिष्ट वर्ग या कुछेक व्यक्तियों के सेवार्थ प्रयुक्त होने लगता है।

सार्त्र बुद्धिजीवियों की भूमिका का प्रबल आलोचक है। बौद्धिक क्रिया-कलापों का एक बड़ा उदाहरण वियतनाम युद्ध के समय मिलता है। कुछ एक बुद्धिजीवियों ने वियतनाम युद्ध के खिलाफ संस्थाएं बनाई, नारे लगाए और यह दिखाने की चेष्टा की कि वियतनाम युद्ध किस-किस प्रकार से मानवता का अहित कर रहा है। इसमें डॉक्टर, वैज्ञानिक, इतिहासविद तथा न्यायाधीश सभी शामिल थे। सार्त्र इनको शास्त्रीय बुद्धिजीवियों की संज्ञा देते हैं क्योंकि ये कर्म के पथ पर अग्रसर नहीं होते। बुद्धिजीवियों से सार्त्र सक्रियता की मांग करते हैं। सार्त्र के शब्दों में, "मेमोरेण्डम, दस्तखत करके, जुलूस निकालकर या वियतनामी युद्ध की निन्दा करने से क्या होगा? चाहे लाखों लोग इसमें लगे रहें—कहीं कुछ नहीं होगा; किन्तु अगर कुछ चुने हुए बौद्धिक गन्दी बस्तियों में जाएं, आर्केलैण्ड पोर्ट पर जाएं, युद्ध फैक्टरियों में जाएं तो फर्क जरूर पड़ेगा। मैं समझता हूं कि अपने दफ्तर में बैठकर जो बौद्धिक लड़ाई करता है, वह प्रति क्रान्तिकारी है, चाहे वह कुछ भी लिखें। बौद्धिक दायित्व केवल बौद्धिक देना ही नहीं बल्कि उस सक्रियता में है, जहां वह अपनी सेवाओं को दमितों के लिए समर्पित करता है।"

सार्त्र के अनुसार वियतनाम युद्ध की निन्दा करके अमेरिकन बौद्धिक उन विश्वविद्यालयों में पढ़ाते रहे, जहां युद्ध पर शोध कार्य होते हैं। उसकी नजर में बौद्धिक, दमन और हत्या के लिए उतने जिम्मेदार हैं जितनी कि सरकार है या सरकारी संगठन है।

निष्कर्ष—संक्षेप में, सार्त्र एक कट्टर व्यक्तिवादी विचारक है जिसके लिए अस्तित्ववाद और मानववाद पर्यायवाची हैं। वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था का समर्थक है जिसमें मानव स्वतन्त्रता और मानव सामाजिक सम्बन्ध साथ-साथ चलते हैं। मार्क्सवाद को वह तब तक अधूरा मानता है जब तक अस्तित्ववाद को उसके आधार के रूप में स्वीकार न कर लिया जाए।

गिल और शर्मन के अनुसार सार्त्र अस्तित्ववाद का मानवीकरण है। कतिपय आलोचकों के अनुसार उसने अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद को मिलाने का प्रयास किया है। इसका यह परिणाम हुआ कि वह मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद दोनों का समर्थन करता है और नये अनुभवों के सन्दर्भ में दोनों परस्पर विरोधी विचारधाराओं में संशोधन करके अपने ही तरीके से उनका सामंजस्य करना चाहता है जो एक आलोचक को यह कहने के लिए मजबूर करता है कि "सार्त्र ऐसा विचित्र समाजवादी है जो शायद ही कभी हुआ हो।" वस्तुतः सार्त्र वर्तमान साम्यवादी व्यवस्थाओं का आलोचक एवं ऐसी नई व्यवस्था का समर्थक प्रतीत होता है जिसमें मानव स्वतन्त्रता और मानव सामाजिक सम्बन्ध साथ-साथ रहते हैं। "अलगाव की पीड़ाओं को हटाना चाहिए, चाहे वह बुर्जुआ समाज में हो या समाजवादी समाज में जिसकी स्थापना एक सफल क्रान्ति के परिणामस्वरूप निन्दनीय बुर्जुआ प्रणाली को हटाकर की गई है।"

आलोचकों के अनुसार सार्त्र का दर्शन सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से क्रान्तिकारी दर्शन माना जाता है। उसकी चेष्टा "हर व्यक्ति को उस दिशा में सजग करना है कि वह क्या है और उसके अस्तित्व की पूरी जिम्मेदारी उसी पर रखना है।"

अलबर्ट कामू (Albert Camus)

अस्तित्ववादी चिन्तन के विकास में सार्त्र के बाद सबसे अधिक रचनात्मक योगदान अलबर्ट कामू का है। वह एक उपन्यासकार और नाटककार था जिसे नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। किर्केगार्द और सार्त्र के समान ही उसके सारे चिन्तन का आधार मानव के व्यक्तित्व पर टिका हुआ है।

कामू का जन्म 1913 में अल्जीरिया के मोंडवी में हुआ। उसने अल्जीरिया विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। सन् 1934 से 1939 तक उसने एक थियेटर मण्डल के लिए नाटक लिखे। बाद में उसने पेरिस कर समाचार-पत्रों में लिखना प्रारम्भ किया। 1942 में उसका प्रसिद्ध उपन्यास 'स्ट्रेंजर' प्रकाशित हुआ,

Scanned with CamScanner

जिससे साहित्य जगत में उसे अपूर्व ख्याति मिली। उसका लेख 'सिसफुस' की परिकल्पना भी बहुत चर्चित रहा। 1947 में उसका प्रसिद्ध उपन्यास 'प्लेग' प्रकाशित हुआ। 1957 में उसे साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। 1960 में एक कार दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई।

शाब्दीय अर्थों में कामू एक दार्शनिक नहीं माना जा सकता फिर भी उसकी रचनाएं दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत हैं। उसके दो प्रसिद्ध निबन्ध 'सिसफुस की परिकल्पना' और 'विद्रोही' उसके नैतिक दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं। इसी नैतिक दृष्टिकोण को उसने अपने उपन्यासों और नाटकों में अभिव्यक्ति दी है।

कामू की समस्त रचनाओं में चाहे वह साहित्यिक कृतियां हों अथवा दार्शनिक ग्रन्थ, हमें सूत्र में जो विचार मिलता है वह जीवन की निरर्थकता का विचार है। सिसफुस के मिथ का विषय यह है कि यह आश्चर्य करना आवश्यक और वैध है कि क्या जीवन का कोई अर्थ है और इसीलिए यह प्रश्न भी वैध है कि क्या जीवित रहना चाहिए या आत्महत्या कर लेनी चाहिए। सभी अन्तर्विरोधों के बावजूद भी इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ईश्वर के होते हुए भी, जीवन के अर्थहीन होते हुए भी, आत्महत्या करना वैध नहीं है।

सार्त्र की दृष्टि में जीवित रहना एक अर्थहीन और थका देने वाला कार्य है। जीवन का एक बंधा-बंधाया क्रम है। सवेरे उठना, ट्राम या बस पकड़ना, चार घण्टे दफ्तर या कारखाने में काम करना, दोपहर का भोजन, फिर ट्राम या बस की यात्रा, फिर चार घण्टे काम करना और उसके बाद रात्रि का भोजन और सो जाना और यह क्रम निरन्तरता से चलता रहता है। लेकिन एक दिन ऐसा भी आता है जब व्यक्ति थककर और हैरानी के साथ अपने से पूछता है कि यह सब वह आखिर क्यों कर रहा है? उसे जीवन की निस्सारता प्रतीत होती है और उसके सामने तीन विकल्प रह जाते हैं—आत्महत्या करना, आशावान होना और जीवन को जीते चले जाना। कामू ने इन तीनों मार्गों की व्याख्या करते हुए कहा है कि आत्महत्या इस समस्या का समाधान नहीं है। कामू दूसरे मार्ग अर्थात् जीवन के दृष्टिकोण को आशावान बनाने के विकल्प का विश्लेषण करता है और उसे इसमें तथा आत्महत्या में कोई अन्तर दिखलाई नहीं देता है। अतः वह तीसरे विकल्प को मानव की स्थिति का मूल तत्व मानता है और कहता है कि व्यक्ति के सामने एक ही रास्ता है कि वह जीवित रहे और वह भयंकर संघर्ष की वास्तविकता को स्वीकार करे।

कामू भी सार्त्र की भांति यह कहलाता है कि चूंकि मनुष्य स्वतन्त्र है, इसलिए अपने उत्तरदायित्व से वह बच नहीं सकता। राजनीतिक व्यवस्था जिस प्रकार की भी हो, व्यक्ति की बात सुनी जाए या नहीं, उसका कुछ प्रभाव हो या नहीं, फिर भी प्रामाणिक व्यक्ति अपनी नैतिक अभिव्यक्ति अवश्य करेगा। हमारे विरोध या समर्थन की परिणामहीनता हमें हमारे उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं कर सकती।

वह एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अपने मूल्य हों, जिन्हें यथासम्भव सार्वजनिक साधनों द्वारा सुरक्षित रखा जाए। राज्य व्यक्तिगत साधनों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक साधन होना चाहिए।

अस्तित्ववाद : आलोचनात्मक मूल्यांकन
(EXISTENTIALISM : CRITICAL EVALUATION)

अस्तित्ववाद की निम्नलिखित तर्कों के आधार पर आलोचना की जाती है :

1. अस्तित्ववाद अनेक विचारों और प्रवृत्तियों का मिश्रण है। इसमें एक साथ परस्पर विरोधी विचार—उदारवाद, नाजीवाद, साम्यवाद के तत्व दिखलाई देते हैं, अतः इसे एक विशिष्ट दर्शन नहीं कहा जा सकता।

राजनीतिक दृष्टि से अस्तित्ववादियों में काफी भिन्नता है। किर्केगार्द अत्यन्त रूढ़िवादी था, 1848 में वह जन आन्दोलनों के दमन में गणतन्त्र का समर्थक था। जैस्पर्स उदारवादी है। हीडेगर कुछ समय तक नाजी रह चुका था। सार्त्र काफी समय तक साम्यवादी दल से जुड़ा रहा।

2. अस्तित्ववादी बौद्धिकतावादियों की जिस शब्दावली एवं विचारों का विरोध करते हैं, प्रायः उनको ही अपनाकर उनकी विषय-वस्तु या प्रस्तावनाओं को मानने से इन्कार करते हैं। उनके तर्क अनुभववादियों से काफी मिलते-जुलते हैं, यद्यपि उनमें नाटकीयता अधिक पाई जाती है।

3. अस्तित्ववादियों के मूल विचार बड़े अस्पष्ट और विरोधाभासी हैं। अस्तित्ववाद से सम्बन्धित प्रचुर साहित्य होने के बावजूद ऐसे कोई व्यक्ति जो इस प्रवृत्ति के एकीकृत व विशद ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास

Scanned with CamScanner

करता है. उसे यह लगता है कि 'चलने के लिए कोई सपाट मार्ग नहीं है, बल्कि केवल एक भूल-भुलैयां वाला विरोधाभासों से भरा रास्ता है।'

4. आलोचकों के अनुसार यह निराशा, हताशा और त्रासदी का दर्शन है। आलोचक इस भयंकर दर्शन से हतप्रभ रहता है कि यद्यपि वह मानव अस्तित्व के यथार्थों से सम्बन्धित है, फिर भी क्या इसका इतना अमूर्त और इतना वीभत्स चित्रण होना चाहिए।

5. मार्क्सवादी आलोचक जॉर्ज लुकाक्स ने अस्तित्ववाद के व्यक्तिवाद को बुर्जुआ बुद्धि की बीमारी का चिह्न बताया है। बुर्जुआ व्यक्ति अपने समाज से मूल्यों को ग्रहण करने के बजाय अपने आन्तरिक अनुभव से अन्धविश्वासों का निर्माण करता जाता है, फिर उन्हें अपने चयन आदेश से अपने ऊपर तथा दूसरों पर थोपता है।

6. अस्तित्ववाद आज की महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का कोई ठोस विश्लेषण नहीं देता, वह एक प्रभावशाली आन्दोलन का रूप भी नहीं ले सका।

आलोचकों के अनुसार अस्तित्ववाद को दर्शन का नाम देना उचित नहीं होगा और उसे राजनीतिक दर्शन की संज्ञा देना तो और भी अधिक अनुचित है। 1960 तक आते-आते अस्तित्ववाद का प्रभाव कम होने लगता है। 1960 में एक दुर्घटना में कामू की मृत्यु हो गई। जैस्पर्स और मार्सेल ने अस्तित्ववाद का परित्याग कर दिया। सार्त्र फ्रांस के साम्यवादी दल की गतिविधियों में अधिक उलझता गया। यह आश्चर्य की बात है कि फ्रांस को छोड़कर कहीं भी यह विचारधारा अधिक प्रभावपूर्ण नहीं बन सकी। कुल मिलाकर अस्तित्ववाद के सम्बन्ध में मुख्य बात यही है कि यह दमन और निरंकुशता के खिलाफ एक ऐसी प्रतिक्रिया है जिसकी सहानुभूति दिग्भ्रमित व्यक्ति के साथ है।

Scanned with CamScanner